Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 11, Issue 2 | November 2023 - April 2024 | pp. 89-92

समकालीन हिन्दी यात्रा साहित्य में पर्यावरण चिंतन

अनिल कुमार

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, धौलपुर (राजस्थान)
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

वर्तमान सदी प्रतिस्पर्धा की सदी है। भूमण्डलीकरण के बाद मुक्त अर्थवयवस्था का दौर चला है जिसमें आर्थिक विकास की दौड़ दौड़ी जा रही है। मनुष्य भौतिकता की दौड़ में अपनी विलासितापूर्ण इच्छाओं की पूर्ति कर लेना चाहता है। अपनी इन आवश्यकताओं की पूर्ति वह पर्यावरण की बिना चिंता किए कर रहा है। मानव की आवश्यकता की पूर्ति के लिए यदि सबसे अधिक किसी ने कीमत चुकाई है तो वह है प्रकृति। मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन कर रहा है। उसकी इस प्रवृति के कारण अनेकानेक पर्यावरणीय चिंताएँ उभर कर सामने आईं हैं। जनसंख्या वृद्धि, बढ़ता शहरीकरण, औद्योगीकरण आदि ने पर्यावरण प्रदूषण की विकराल समस्या को जन्म दिया है। औद्योगीकरण की बढ़ती आकांक्षा ने आज प्रकृति की गोद में बसे आदिवासी समुदाय के जीवन को भी संकट में डाल दिया है। पर्यावरण की समस्याओं पर अब लोगों का ध्यान जाने लगा है। इस संबंध में सरकार द्वारा भी प्रयास किये जा रहे हैं। साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्यकारों ने भी इस ज्वलंत प्रश्न को अपनी लेखनी के माध्यम से मुखरता प्रदान की है। हिन्दी साहित्य में यात्रा साहित्य के संबंध में इस समस्या पर विचार किये जाए तो यात्रावृत्तांतकार भी इस ज्वलंत प्रश्न से जूझे हैं।

संकेताक्षर—*भू मण्डलीकरण, बाजारीकरण, प्रदूषक, पारिस्थितिकी, ग्लोबल वार्मिंग*

प्रस्तावना

आज मनुष्य के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती अपने पर्यावरण की चिंता करते हुए विकास करने की है। विकास के दौरान जिस प्रकार जंगलों की अंधाधुंध कटाई कर शहरीकरण व औद्योगीकरण किया जा रहा है, वह विकास की अंधी दौड़ ही है। इसके माध्यम से हम अपने पर्यावरण को क्षति पहुँचा रहे हैं। जीवन चक्र को सुरक्षित रखने के लिए पर्यावरण को सुरक्षित एवं संतुलित बनाए रखना जरूरी है। भारतीय संस्कृति हमेशा से ही प्राकृतिक संपदा के संरक्षण का संदेश देती रही है। प्राचीन काल से ही ऋषि-मुनियों ने प्राकृतिक संपदा जल, जंगल, जमीन के प्रति पर्यावरण चेतना को जन-जीवन से जोड़ने की कोशिश की है। इनके अनुसार प्रकृति से उनका प्रेम और साहचर्य ही मनुष्य को पर्यावरण प्रदूषण से बचा सकता है। किंतु आज जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण, शहरीकरण व तकनीकी विकास के कारण हमारे वन और उनकी अमूल्य सम्पति का दिनों दिन ह्रास हो रहा है। आज जो विकास योजनाएँ तैयार की जा रही हैं, उनमें पर्यावरणीय मुद्दों को अधिक महत्व नहीं दिया जा रहा है। इसके कारण पर्यावरण प्रदूषण एवं पारिस्थितिकी असंतुलन की समस्या सामने आती है। समकालीन हिन्दी यात्रावृत्तों में पर्यावरण संकट पर पूर्णतः केन्द्रित कोई उल्लेखनीय कृति का नाम नहीं लिया जा सकता और कहानी, कविता, उपन्यास, निबंध जैसी विधाओं की तुलना में प्रकृतिगत भिन्नता के चलते यात्रावृत्त जैसी विधा से इस प्रकार की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती पर प्रासंगिक रूप से इस समस्या के संबंध में आधुनिक हिन्दी यात्रा साहित्य दो-चार

हुआ है एवं विभिन्न यात्रावृत्तांतकारों ने अपने यात्रा वर्णनों से जन जागरण करने का प्रयास किया है।

केवल विकास के नाम पर प्रकृति से छेड़छाड़ मानवीय हित में नहीं है। अजय सोडानी अपने यात्रा वृत्तांत 'दरकते हिमालय दर-ब-दर' में लिखते हैं, "इतिहास गवाह है कि किसी भी कालखंड में बग़ैर समुचित यातायात व्यवस्था के जीवन-यापन करना संभव न तो था और न होगा। पर इसके मायने यह नहीं कि धरा के वे कोने, जहाँ प्राकृतिक स्थितियों के बरअक्स, मानव बस्तियाँ न अब तक बनी हैं और न कभी बन पाएँगी, वहाँ सड़कें सिर्फ इसलिए थोप दी जाएँ कि गाँव तथा शहरों के रंगीन मिज़ाज बशरों को रंगरेलियाँ मनाने को एक और 'अछूता' धरा का टुकड़ा मुहैया कराया जा सके। यह उतना ही बड़ा पाप है जितना किसी कुँवारी कन्या को खींचकर देहलोलुप भेड़िए के समक्ष डाल देना।"[1] पहाड़ों की छाती चीर कर केवल पर्यटन के लिए सड़कें बना देना प्रकृति व पर्यावरण से ज्यादती करना ही है। इसके कारण जैव विविधता को नुकसान पहुंचाया जा रहा है जिसके परिणाम बहुत ही घातक हो सकते हैं। इस संबंध में देवेन्द्र मेवाड़ी अपने यात्रा वृत्तांत 'दिल्ली से तुंगनाथ वाया नागनाथ' में लिखते हैं "एक बार मोटर रोड बन गई तो जंगल गायब होना शुरू हो जाएगा। कमर्शियल गतिविधियां शुरू हो जाएंगी। सीमेंट, कंक्रीट का जंगल खड़ा हो जाएगा। कानाताल की पहाड़ी को देखा आपने? वहां रिजोर्ट ही रिजोर्ट बन गए हैं, हट्स बन गई हैं, सारा शहरी कल्चर पनप गया है और जंगल गायब हो गया है।"[2] अजय सोडानी लिखते हैं कि "विकास के नाम पर भरमा कर अपने स्वार्थसिद्ध करने पर आमादा लोगों क्या तुम भूल गये कि डायन तक पड़ोस का घर बक्श देती है.....लाखों वर्षों से क्रियाशील इस जैव विविधता को यदि मानव ने छुआ भी तो सारी कयानात पर संकट आ जाएगा.....हाऽ.....यऽ...यहाँ सड़कें बनेंगी.....अरे निगोड़ों! तुम जानते हो कि ऐसे स्थानों से हमारा गुजरना भी यहाँ के पर्यावरण में बदलाव लाता है।"[3] आज गाँव शहरों में बदलने को मजबूर हैं। रोजाना नई योजनाएँ बन रहीं हैं जिनके आड़े आते जंगल या तो काटे जा रहे हैं या एक रात में सूख जाते हैं। आज का शिक्षित मनुष्य किस प्रकार प्रकृति को नुकसान पहुँचा रहा है, इस संबंध में अजय सोडानी लिखते हैं "विडम्बना है कि हजारों वर्ष पहले का 'जंगली' अपनी हद स्वयं निर्धारित कर प्रकृति को सहेजने का प्रयास करता है जबकि आज का 'ज्ञानी' कसमसाती वसुन्धरा का मान मर्दन करने के नित नये तरीक़े ईज़ाद कर रहा है।"[4]

हिमालय की वादियों के यायावर अजय सोडानी अपने यात्रावृत्तांत 'दर्रा-दर्रा हिमालय' में तीर्थ स्थानों का किस प्रकार से नकदीकरण हुआ है और इस सब में वृद्धि सड़क निर्माण के बाद हुई है। वह लिखते हैं "सड़क ने सिर्फ़ धर्म पिपासुओं को ही आसान मार्ग नहीं दिया, उसने धन पिपासुओं की भी चाँदी कर दी। लोगों ने मार्ग में जगह-जगह पहाड़ों को खुरच-खुरच कर उसे निर्वस्त्र कर दिया। समतल मैदानों को बड़े-बड़े आश्रमों ने लील लिया और निश्छल भागीरथी को लँगड़ी मारकर रोकने के प्रयास करने वालों को सड़क ने विकास के नाम पर प्रकृति को खुल कर लूटने की छूट प्रदान कर दी।"[5] अब दुनिया में 'ग्लोबल वार्मिंग' की चर्चा होने लगी है। जिसके कारण पृथ्वी के तापमान में वृद्धि की बात की जाने लगी है एवं यह भी आशंका जताई जाने लगी है कि इसके कारण हिमालय के ग्लेशियर पिघलने लगे हैं। इस संबंध में अजय सोडानी लिखने हैं "ग्लोबल वार्मिंग की आड़ में कार्बन खरीदने व बेचने का एक और नया व्यवसाय प्रारम्भ हो गया। एक अर्द्धसत्य को इस तरह से पेश किया गया कि दुनिया तापमान और कार्बन उत्सर्जन को काबू में करने की एक नई अंधी दौड़ में व्यस्त हो गई। गाड़ियों को दौड़ाने हेतु पैट्रोल या बायो डीजल का उपयोग प्रचलित किया गया, जिसके चलते हजारों-हजार एकड़ जंगल काटकर गन्ने उगा दिए तथा हजारों-हजार एकड़ उपजाऊ जमीन पर बायो डीजल बनाने में काम आने वाले पौधे लगा दिए। इस आपाधापी में, जाने-अनजाने, हमारी एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक सम्पदा नेस्तनाबूद होने के कगार पर आ गई। वह सम्पदा है—जैव विविधता, जिसके बिना यह संसार चल ही नहीं सकता। इस सम्पदा का अर्जन हुआ संसार में रहने वाले दस करोड़ से अधिक प्रकार के जीव-जन्तु तथा वनस्पितियों के आपसी तालमेल से, जिसमें ब्रह्माण्ड के प्रत्येक अवयव, जैसे जल, जमीन, वायु, सूर्य, चन्द्र, ग्रह-तारे आदि सबने अपना-अपना सहयोग दिया। धरा की उर्वरता, हवा की गुणवत्ता और जल की निर्मलता यहाँ तक कि हमारी जिस्मानी कार्यक्षमता-अक्षुण्ण जैव विविधता पर निर्भर करती है।"[6] अर्थात् जैव विविधता प्रकृति का महत्वपूर्ण घटक है जिसको बनाए रखना चाहिए। इसके कारण की तलाश करते हुए वह कहते हैं कि "सारा विश्व एक परिवार' के व्यापक स्वरूप को समझने

के पश्चात लगा कि ग्लेशियरों का पिघलना, तालाबों का सूखना या तापमान का बदलना, इन सब का मूल कारण, हो न हो, अनियोजित विकास से हो रहा जैव विविधता में बदलाव ही है।"[7] इस प्रकार अजय सोडानी ग्लोबल वार्मिंग के लिए जैव विविधता में होने वाले ह्रास को उत्तरदायी ठहराते हैं जो कि अनियोजित विकास का नतीजा है। आजकल पेड़, पौधों, पहाड़ों को विकास के मार्ग में रोड़ा माना जाता है। विकास की इमारत प्राकृतिक सम्पदा की कीमत पर खड़ी की जा रही है।

अजय सोडानी अपनी हिमालय यात्रा की वजह बताते हुए लिखते हैं कि "हमारा मक़सद है कि उन जगहों का चित्रण कर लोगों को दिखाना जहाँ प्रकृति, कुछ हद तक सही, आज भी अपने पुराने स्वरूप में विद्यमान है, ताकि समय के साथ उन स्थानों में बदलाव आए तब लोगों को सही मायने में एहसास हो कि तथाकथित विकास की एवज में वे क्या खो चुके हैं।"[8] शहरीकरण के कारण प्रकृति का निरंतर ह्रास हो रहा है। आज गाँव भी शहरीकरण की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इस संबंध में अजय सोडानी लिखते हैं "गाँवों का उद्धार उनके शहरीकरण से नहीं अपितु उनके सशक्तिकरण से होगा। उन्हें जागरूक कर, वहाँ उपलब्ध हवा और पशुधन का उपयोग सिखाना, ऊर्जा की परिपूर्ति करना कहीं सस्ता और आसान है बजाय उन्हें बाँधों की आड़ में डुबो देने के। तकनीक का उपयोग कर ग्रामीण क्षेत्रों को शेष विश्व से जोड़ देना नहीं ज्यादा उपयोगी और दूरगामी प्रभाव छोड़ेगा बजाय उनकी संस्कृति को छिन्न भिन्न कर उन्हें दोयम दर्जे का शहर बनाने के। हम सबको मिलकर एक आंदोलन खड़ा करना होगा जो मानव मात्र को सीमित प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग करने की दिशा में जागरूक कर सके।"[9] अजय सोडानी ने अनियोजित शहरीकरण की समस्या का समाधान देने के साथ ही लोगों को सीमित प्राकृतिक संसाधनों के समुचित उपयोग की सीख देने की पहल की है।

आज उपभोक्तावाद का दौर है, मनुष्य संसार की हर वस्तु का उपभोग कर लेना चाहता है। इसी उपभोक्तावादी सोच के कारण प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग हो रहा है। मधु कांकरिया अपने यात्रा वृत्तांत 'बादलों में बारूद' में मनुष्य की इस उपभोक्तावादी संस्कृति पर कटाक्ष करते हुए कहती है कि आदिवासियों में इस प्रकार की उपभोक्तावदी सोच नहीं है, वह जिस जंगल के बीच रहते हैं उसकी रक्षा भी करते हैं। वे लिखती है "आदिवासी दिनभर लकड़ियों के बीच रहता है पर उसके घर में लकड़ी का पलंग कुर्सी तक नहीं मिलेगी। क्यों? इसलिए नहीं कि वह इन्हें बनवा नहीं सकता था, इतना तो वह किसी लकड़हारे से भी करवा सकता था, पर भीतर यथार्थ यह है कि आदिवासियों में उपभोक्तावाद था ही नहीं। बिना जरूरत के वह कभी पेड़ भी नहीं काटता है। यह उपभोक्तावाद उसने हमसे सीखा है।"[10] मधु कांकरिया सुंदरवन की यात्रा के दौरान देखती हैं कि यहाँ पर वन अधिकारियों का हस्तक्षेप बहुत ही ज्यादा बढ़ गया है, वह लिखती हैं "बहुत शीघ्र ही यथार्थबोध हो गया कि सुंदरवन में सब कुछ सुंदर नहीं है। जंगली बाघ चाहे कम हो रहे हैं, पर खर-पतवार की तरह बढ़ रहें हैं इनसानी बाघ।"[11] अपनी लद्दाख यात्रा के दौरान वह देखती हैं कि प्रकृति व पर्यावरण के प्रति लामा बहुत ही जागरूक हैं। वे लिखती हैं "लेकिन सारे अंध विश्वास व कर्मकाण्ड के बावजूद पर्यावरण के प्रति लामा बहुत सचेत व सजग हैं। इनके पांच रंगों के प्रार्थना ध्वज में सारे रंग प्रकृति के सारे तत्वों की रक्षा के लिए हैं। कई जगह इन्होंने लिखवाया है—'लामा के इस देश में गामा (बदमाश) मत बनो।' .....पेड़, पर्वत, पर्यावरण, जल, धरती, बादल और हवा के प्रति इनके समर्पण के चलते ही लद्दाख स्वच्छ एवं प्रदूषण मुक्त है।"[12]

दिल्ली से कोलकाता तक नाव से यात्रा करने वाले यायावर राकेश तिवारी ने भी पर्यावरण प्रदूषण के मुद्दे को उठाया है। वह यमुना नदी में प्रदूषण के संबंध में लिखते हैं "यमुना की इस दशा के सबसे ज्यादा जिम्मेदार हम ही हैं। आज से करीबन साढ़े छह सौ बरस पहले इसके शोषण का सिलसिला शुरू हुआ-मुगलों ने इससे पहली नहर निकाली। इसके चार सौ बरस के अंदर ही दोआब की सिंचाई के लिए बहुतेरा जल खींच लिया गया। फिर, ओखला (दिल्ली) से 'आगरा-नहर' क्या निकाली उसे पूरी तरह से लूट ही लिया। नतीजा यह है कि बरसात के अलावा सारे बरस यमुना छोटे-छोटे नदी नालों की मुहताज है। सैंकड़ों बरसों तक यमुना जल के बल पर बढ़े-चले दिल्ली, आगरा, मथुरा जैसे नगरों के बाशिन्दों ने ही शहर भर का जहर नालों में समेटकर यमुना को पिला दिया। इसलिए आज यमुना अपनी दुर्दशा पर आठ-आठ आँसू रोती है और बरसात में मौका पाते ही पाटों पर दौड़ती आर-पार के लोगों को कालिय नाग जैसा डसती है।"[13] गाजीपुर में अफीम के कारखानों के कारण सारा पानी दूषित हो गया है । इस पानी को पीकर आस-पास के बंदर भी दिन भर नशे में ही रहते हैं।

नर्मदा की परिक्रमा करने वाले यायावर अमृतलाल वेगड़ ने भी नदियों में प्रदूषण की समस्या पर लोगों का ध्यान खींचा है। उनके अनुसार श्रद्धालुओं के साथ-साथ कई संकट भी नर्मदा की परिक्रमा करते रहे हैं। इनमें से कई संकट सरदार सरोवर जैसे विशालकाय हैं तो कई आँखों से नजर न आने वाले प्रदूषकों जितने सूक्ष्म। नर्मदा किनारे के छोटे-बड़े 52 शहरों का मलमूत्र नर्मदा में गिरता है। उन्होंने अपनी यह चिंता अपने यात्रा-वृत्तांत में भी की है, नदियाँ शहरों के कारखाने और गंदगी ढोने का काम कर रही हैं—"यहाँ एक मछुआरे ने मुझे बताया कि किसी समय यहाँ खूब मछलियाँ थीं, पर अब नहीं। किसानों के जहरीले कीटनाशक और रासायनिक खाद बहकर नदी में आते हैं और मछलियों को मार डालते हैं।"[14] "हम नर्मदा को तरह-तरह से गंदा कर रहे हैं। नदी से उसका पानी तो निचोड़ते ही हैं, उसका रेत भी निकाल रहे हैं-मशीनों से।"[15] प्रदूषण के कारणों की भी पड़ताल उनके द्वारा की गई है- "आबादी का विस्फोट इस सुन्दर देश को नरक बना रहा है।"[16] इसके कारण वह कहते हैं कि "यह सब मनुष्य के अविवेकपूर्ण व्यवहार के कारण हो रहा है। अभी भी समय है।.....नदियों को स्वच्छंद रहने दो।.....पर्यावरण को तुम्हारी जरूरत नहीं है, तुम्हें पर्यावरण की जरूरत है।"[17]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समकालीन यात्रा साहित्य में पर्यावरण से संबंधित विभिन्न समस्याओं को उभारा गया है। चाहे वह समस्या असंतुलित विकास की हो, पर्यावरण प्रदूषण की हो, ग्लोबल वार्मिंग की हो, भूमण्डलीकरण के कारण उत्पन्न विभिन्न समस्याएँ हों, सभी से उत्पन्न खतरों की सार्थक चर्चा की गई है। हिन्दी यात्रा साहित्य में पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं, प्रकृति के सौंदर्य चित्रण व मानवीकरण से लेकर पर्यावरणीय समस्याओं पर मंथन किया गया है। इसके साथ ही इन समस्याओं का तार्किक व संतुलित हल देने का भी प्रयास किया गया है। साहित्य मानव को प्रकृति से अपना संतुलन बैठाकर विकास करने की सीख देता है एवं प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग के लिए प्रेरित करता है। मनुष्य का संपूर्ण अस्तित्व पृथ्वी पर टिका हुआ है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग आवश्यक है। पर्यावरण संरक्षण की दिशा में तब तक कोई प्रयास सफल नहीं हो सकता जब तक कि व्यक्तिगत रूप से प्रयास नहीं किये जायेंगे। इस कार्य को केवल सरकारों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता है। इस संबंध में व्यक्तिगत पहल करनी ही होगी और साहित्यकारों को भी अपना दायित्व समझना होगा।

संदर्भ सूची

1. सोडानी, अजय, दरकते हिमालय पर दर-ब-दर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018 पृ.सं. 59
2. मेवाड़ी, देवेन्द्र, दिल्ली से तुंगनाथ वाया नागनाथ, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2018, पृ.सं. 15
3. सोडानी, अजय, पूर्वोक्त पृ.सं. 60
4. उपर्युक्त, पृ.सं. 146
5. सोडानी, अजय, दर्रा-दर्रा हिमालय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019 पृ.सं. 22
6. उपर्युक्त, पृ.सं. 73
7. उपर्युक्त, पृ.सं. 74
8. उपर्युक्त, पृ.सं. 76
9. उपर्युक्त, पृ.सं. 107
10. कांकरिया, मधु, बादलों में बारूद, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ.सं. 40
11. उपर्युक्त, पृ.सं. 109
12. उपर्युक्त, पृ.सं. 149
13. तिवारी, राकेश, सफर एक डोंगी में डगमग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ.सं. 64
14. वेगड़, अमृतलाल, तीरे-तीरे नर्मदा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2018, पृ.सं. 331
15. उपर्युक्त, पृ.सं. 338
16. उपर्युक्त, पृ.सं. 338
17. उपर्युक्त, पृ.सं. 353